RAWATSAR P.G. COLLEGE

'Sanskriti Ka Badlta Swaroop Aur AI Ki Bhumika' (SBSAIB-2025)

DATE: 25 January 2025

International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)

Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 8.152

ब्रजभाषा की कृष्ण काव्य परम्परा में मीरा

कंचन अग्रावत, शोधार्थी, हिंदी विभाग, मेवाड़ विश्वविद्यालय, गंगरार, चित्तौड़गढ़, राजस्थान

प्रो. सुशीला लड्ढ़ा, निर्देशक, मेवाड़ विश्वविद्यालय, गंगरार, चित्तौड़गढ़, राजस्थान

डॉ. प्रेम सिंह, सह निर्देशक, मेवाड़ विश्वविद्यालय, गंगरार, चित्तौड़गढ़, राजस्थान

ब्रज एक क्षेत्र विशेष का नाम है और ब्रजभाषा आज के युग में एक क्षेत्र की भाषा के रूप में जानी जाती है। यदि यह एक क्षेत्र विशेष जनपद की भाषा है तो इसे बोली का दर्जा क्यों प्रदान नहीं है ? इसे एक भाषा के रूप में क्यों जाना जाता हैं ? इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही विस्तृत है, हिन्दी की प्रारम्भिक काव्य – रचनाओं की भाषा ब्रज ही रही हैं। लगभग विक्रम संवत् की 13वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक भारत के मध्यदेश की मुख्य साहित्यिक भाषा एवं समस्त भारत की साहित्यिक भाषा के रूप में रहने के कारण ब्रज की इस जनपदीय बोली को श्ब्रजबोलीश न कहकर 'ब्रजभाषा' के रूप जाना जाता है । विभिन्न स्थानों की बोलियों के साथ समन्वय करते हुए 'ब्रजभाषा' समस्त भारत में विस्तृत रूप से प्रयुक्त होने वाली हिन्दी का प्रारम्भिक स्वरूप है। अपने विशुद्ध रूप में ब्रजभाषा आज भी आगरा, हिण्डौन सिटी, धौलपुर, मथुरा, मैनपुरी, अलीगढ़, एटा आदि जिलों में बोली जाती हैं । इसे 'केन्द्रीय ब्रजभाषा' के नाम से भी जाना जाता है।

लगभग आठ शताब्दियों तक हिन्दी साहित्य पर आधिपत्य रखने वाली तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास को उत्कृष्ट रचनाएँ देने वाली 'ब्रजभाषा' का जन्म शौरसेनी भाषा से माना जाता हैं। संस्कृत भाषा का प्रचलन कम होने के बाद पालि, प्राकृत व अपभ्रंश के बाद ब्रजभाषा ही देश की साहित्यिक भाषा बनी । भक्तिकालीन सभी भक्त कवियों तथा रीतिकालीन कवियों ने अपनी रचनाएँ इसी भाषा में लिखी हैं। ब्रजभाषा का कुछ दृष्टान्त आदिकाल से ही आरम्भ हो गया था, जो भक्तिकाल तथा रीतिकाल में अपने चरम पर रहा तथा ब्रजभाषा को श्रेष्ठ साहित्यिक भाषा के रूप में इन्हीं कालों में पहचान मिली। आधुनिक काल के शुरूआत में भी इस भाषा के कई रचनाएँ उदाहरण स्वरूप मिलती हैं।

''ब्रजभाषा साहित्य का कोई अलग इतिहास नहीं है, इसका कारण यह हैं कि हिन्दी और ब्रजभाषा दो सत्ताएँ नहीं है अपितु एक–दूसरे की पूरक हैं।''[1] प्रारम्भ में हिन्दी – काव्यों की रचना ब्रजभाषा में ही हुई हैं क्योंकि उस काल में हिन्दी का अर्थ ही ब्रजभाषा से लिया जाता था । सूरदास, रहीम रसखान, मीरा, केशव, देव, घनानंद, मतिराम, बिहारी इत्यादि कवियों व भक्त कवियों ने अपनी रचनाएँ इसी ब्रजभाषा में लिखी हैं।

ब्रजभाषा की रचनाओं में कृष्णलीला, श्रृंगार वर्णन तथा माधुर्य भाव का बाहुल्य हैं, जिसके आधार पर यह समझा जाता हैं कि यह भाषा श्रृंगार विषय प्रधान है और इसमें आम मनुष्य की अन्य चेष्टाओं का वर्णन उपलब्ध नहीं है, परन्तु जब हम भक्तिकालीन काव्य की भक्ति विषयक रचनाओं, रीतिकालीन आचार्यों की नीति – प्रधान रचनाओं तथा आधुनिक काल की भारतेन्दु व द्विवेदी की देशभक्ति से ओत–प्रोत रचनाओं की ओर देखते हैं तो ब्रजभाषा का संसार बहुत ही विस्तृत व रोचक दिखाई पड़ता है।

''आदिकालीन ब्रजभाषा अपभ्रंश से बहुत प्रभावित हैं। हेमचन्द्र के व्याकरण में ब्रजभाषा का पूर्वरूप सुरक्षित है। संदेशरासक प्राकृत पैंगलम् आदि संधिकालीन रचनाओं में भी ब्रजभाषा के रूप हैं।''[2] हेमचंद्र के व्याकरण के उदाहरणों में ब्रजभाषा का बीजरूप देखने को मिल जाता है –

सासानल जल झलक्कियड
महु खण्डिर माणु

'झलक्कियड' से ब्रजभाषा का झलस्यों और 'खण्डिउ' से 'खण्ड्यो' रूप का विकास बहुत ही सहज है। भक्तिकाल में सूरदास जी को ब्रजभाषा के प्रवर्तक के रूप में माना जा सकता है। सूरदास ने इस भाषा में श्रीकृष्ण काव्य परम्परा का वहन करते हुए कृष्ण के विनय के पद, वात्सल्य के पद, बालक्रीड़ा, छेड़छाड़, श्रृंगार आदि पदों की रचना श्ब्रजभाषाश में ही की है। इस काल में ब्रजभाषा प्रमुख रूप से साहित्यिक भाषा के रूप में उभर कर सामने आई । सूरदास के ब्रजभाषा का पद दृष्टव्य है–

यशोदा हरि पालने झुलावै
मेरे लाल को आउ निदरिया
काहे ना आनि सुलावै।[4]

International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 8.152

[1] वेब www-rachanakar-org–डॉ. श्याम का आलेख ''ब्रजभाषा व उसकी काव्य यात्रा'' के आधार पर।

[2] हिन्दी और भारतीय भाषा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन/डॉ. रामछबीला त्रिपाठी/प्रस्तुति से/पृ. 22

[3] वेब https://www.literature.com> राजीव के आलेख 'ब्रजभाषा : साहित्यिक भाषा के रूप में विकास'' से।

[4] 'सूर पदावली / वागदेव / पृ. 114

इस काल में सूरदास के अतिरिक्त, अष्टछाप के कवियों, रहीम, रसखान, मीरा आदि रचनाकारों ने इस ब्रजभाषा का अपने काव्य में प्रयोग किया है।

रीतिकाल में आते–आते ब्रजभाषा एक परिनिष्ठित भाषा के रूप में परिलक्षित हो जाती है। रीतिकाल में ब्रजभाषा काव्यशास्त्रीय रूप ले लेती है तथा लाक्षणिक ग्रंथों में इस भाषा का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। बिहारी की ब्रजभाषा परिनिष्ठत भाषा के सभी लक्षण उपस्थित हो जाते हैं–

देखत बनै ने देखिबो अनदेरखै अकुलाहिं।
इन दुखिया अंखिपान को सुख रिज्यौई नाहिं।।[5]

आधुनिक काल में ब्रजभाषा केवल भारतेंदु युग तक ही साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित रही। उसके बाद इस साहित्यिक भाषा का स्थान हिन्दी की खड़ी बोली ने ग्रहण कर लिया । भारतेन्दु की मुकरियों में ब्रजभाषा का उदाहरण इस प्रकार है –

सीटी देकर पास बुलावै, रूपया ले तो निकट बिठावै ।
लै भागे मोहि खेलहि खेल, क्यों सखि साजन ना सखि रेल।।[6]

इस प्रकार 7 शताब्दियों से भी अधिक समय तक ब्रजभाषा ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना वर्चस्व बनाये रखा।

भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि सूरदास, रसखान, तुलसीदास आदि से लेकर आधुनिक काल के श्रीवियोगी हरि तक ब्रजभाषा में प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य, गंध काव्यों की रचना होती रही हैं। कृष्ण काव्य परम्परा में ब्रजभाषा का विशेष महत्व रहा है। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्थल ब्रज माना जाता है इसलिए शायद कृष्ण साहित्य के भक्त कवियों व रचनाकारों ने भी अपने आराध्य की लीलाओं का वर्णन करने के लिए उसी स्थान को चुना होगा।

गोकुल (ब्रज) में कृष्ण काव्यधारा के सम्प्रदायों का केन्द्र बनने के बाद कृष्ण साहित्य वहाँ की स्थानीय बोली (ब्रज भाषा) में लिखा जाने लगा और इसी प्रभाव के कारण ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल में कई संत भक्त कवियों ने अपने काव्यों व पदों की रचना ब्रजभाषा में की है। भक्त कवयित्री मीरा का भी ब्रजभाषा साहित्य में विशेष महत्व रहा है।

[5] बिहारी सतलई/डॉ. डी. एस. भाटी

[6] ~~मुकरियाँ / भारतेन्दु हरिशचन्द्र~~

मीरा एक प्रसिद्ध संत भक्त कवयित्री तथा श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेमिका थी। इस सम्पूर्ण संसार में श्रीकृष्ण प्रेम की सबसे बड़ी साधक मीरा है। इसलिये आज भी जब श्रीकृष्ण प्रेम की चर्चा होती हैं तो उस चर्चा में मीरा का नाम अवश्य आता है। मीरा भक्तिकाल की कृष्ण–भक्ति शाखा की एक प्रमुख संत कवयित्री है। मीरा बाई का जीवन परिचय व कृतित्व प्रामणिकता के आधार पर विवादास्पद हैं परन्तु जब मीरा के कृष्ण भक्ति से ओत–प्रोत स्फुट पदों का आस्वादन किया जाता हैं तो यह सभी बातें उसके आगे गौण सी प्रतीत होती हैं।

मीरा का जन्म लगभग 1504 वि.सं. के आसपास मेड़ता में दूदा जी के चौथे पुत्र रतन सिंह के घर हुआ था। (कुछ किताबों में चौकड़ी, कुड़की व बाजौली दिया गया मीरा का जन्म राठौड़ राजपूत परिवार में तथा विवाह मेवाड़ के सिसोदिया वंश में हुआ था। वे बचपन से ही कृष्ण भक्ति में रूचि लेने लगी थी जो उन्हें विरासत के तौर पर अपने पैतृक परिवार से मिली थी। इनका विवाह उदयपुर के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के थोड़े समय के बाद ही उनके पति भोजराज का स्वर्गवास हो गया था। पति के परलोकवास के बाद कृष्ण के प्रति इनकी भक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती गई।

International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 8.152

अब वे मंदिरों में जाकर वहां मौजूद कृष्णभक्तों के सामने कृष्णजी की मूर्ति के आगे भजन करते हुए नाचने लगी।

मीरा का कृष्ण भक्ति में मंदिरों में नाचना, गाना राजपरिवार को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने मीरा को परेशान करना प्रारम्भ कर दिया, उन्हें जान से मारने का भी प्रयत्न किया गया, परन्तु श्रीकृष्ण भक्ति ने हमेशा उनका साथ देते हुए उनकी रक्षा की। अपने ही परिवार के व्यवहार से परेशान होकर मीरा द्वारका और वृंदावन चली गई । वे जहां जाती थी, वहां उन्हें लोगों का सम्मान मिलता था । स्वयं के परिवार से आलोचना और शत्रुता भरा व्यवहार मिलने के बावजूद मीरा ने जीवनभर श्रीकृष्ण की भक्ति की और संतों जैसा जीवन व्यतीत किया । वृंदावन आने के पश्चात् मीरा ने स्वयं को गोपी मानते हुए श्रीकृष्ण की भक्ति में पागल हो सब कुछ भुला दिया।

मीरा ने कृष्ण भक्ति में बहुत सारे पदों और काफी भजनों को रचा तथा गाया । मीरा ने बड़े ही सहज और सरल शब्दों में अपनी प्रेम पीड़ा को पदों में व्यक्त किया है। मीरा की काव्य भाषा में विविधता दिखलाई देती हैं। कहीं वे शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग करती हैं, तो कहीं राजस्थानी बोलियों का सम्मिश्रण झलकता है। इनकी काव्य भाषा में कहीं गुजराती पूर्वी हिन्दी हैतो कहीं पंजाबी के शब्दों की बहुतायत है। मीरा की भाषा में विविधता के बारे में डॉ. सत्येन्द्र कहते है –

''मीरा के पद गुजरात से लेकर बंगाल तक व्याप्त है । मीरा का कृतित्व लोकभूमि के बहुत निकट था, अतः प्रत्येक क्षेत्र में मीरा के पदों की भाषा उस क्षेत्र की ही भाषा हो गयी है । फिर भी राजस्थानी उनकी जन्मभूमि मेड़ता की भाषा थी, गुजरात में भी वे रही थी, अतः गुजराती पर भी उनका अधिकार हो सकता है। ब्रजभाषा इस युग में सर्वत्र सामान्य भक्ति की भाषा थी। इन तीनों में ही उन्होंने अपने पद रचे हों, यह असंभव नहीं। हम उन्हें ब्रजभाषा का भी कवि मानते हैं।[7]

मीरा की पदावली की भाषा बहुत ही विवादास्पद हैं। संख्या की दृष्टि से पदावली में राजस्थानी में प्राप्त पद अधिक हैं। फिर भी ब्रजभाषा के जो पद है वे विशुद्ध ब्रजभाषा में लिखे गये हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मीरा की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि ''मीरा के पद कुछ तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में ।''[8]

डॉ. रामकुमार वर्मा ने ''मीरा के अधिकांश पदों की भाषा को मूलतः ब्रजभाषा माना हैं जिन पर मारवाड़ी भाषा का प्रभाव है।[9]

डॉ. श्रीकृष्णलाल ने भी मीरा के पदों को ब्रजभाषा और ब्रजमिश्रित राजस्थानी भाषा में विरचित माना हैं। उनके मतानुसार ''कुछ पदों में मीरा ने ऐसी परिष्कृत तथा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है जो पिछले खेवे के कवियों के लिये आदर्श मानी जा सकती है।''[10]

मीरा ने मुख्य रूप से अपने पदों में किस भाषा का प्रयोग किया हैं यह निश्चित कर पाना मुश्किल है, परन्तु मीरा ने भी तत्कालीन संतों की तरह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया है। अर्थात् वे जहां भी अधिक समय तक रहती उस समाज की बोली को अपनाकर अपने प्रियतम कृष्ण का भजन करने लगती। उनकी मातृभाषा राजस्थानी थी, परन्तु वे कुछ समय तक वृंदावन में भी रही थी। मीरा के पद शुद्ध ब्रजभाषा में भी प्राप्त होते हैं .–

[7] ब्रज साहित्य का इतिहास/डॉ. सत्येन्द्र/पृ. 248
[8] हिन्दी साहित्य का इतिहास/आचार्य रामचन्द्र शुक्ल/पृ. 179
[9] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास/डॉ. रामकुमार वर्मा/पृ. 587
[10] मीराबाई/डॉ. श्रीकृष्णलाल/पृ. 168

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हारों साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
रेन पडे ही उठि जाऊँ मोर भये उठि जाऊँ।
रैन दिना वाके सँग खेलूँ ज्यूँ ज्यूँ बाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावे सोई पहिरू जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुरानी उन बिन पल न रहाऊँ।[11]

ब्रजभाषा में विरचित एक अन्य पद मीरा का इस प्रकार है

माई री म्हाँ लियाँ गोविन्दाँ मोल।

International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 8.152

ये कह्याँ छाणे म्हाँ काँचोड्डे, लियाँ बजन्ता ढोल।
थे कह्याँ मुँहौधो म्हाँ कहाँ सुस्तो, लियारी तराजाँ तोल।[12]

मीरा के कई पद विशुद्ध ब्रजभाषा में है तो उससे भी अधिक पद राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में हैं। एक पद उदाहरण स्वरूप दृष्टव्य है.

हरि थें हर्या जण रो भीर।
द्रोपती री लाज राख्याँ थे बढायाँ चीर।
भगत कारण रूप नरहरि, धरयाँ आप सरीर।
बूड़ताँ गजराज राख्याँ, कट्याँ कुँजर भीर।
दासि मीराँ लाल गिरधर, हरा म्हारी पीर।[13]

निष्कर्ष :–

मीरा के पदों की भाषा शैली सीधी, सरल एवं गतिमान हैं। उनके पद लोकप्रिय एवं गेय होने से वर्षों से अनेक प्रांतों में गाये गये । कालानुसार उन पर अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़ता गया। यह भाषा प्रसाद एवं माधुर्य युक्त हैं। मीरा ने अपने काव्य में किसी भी एक भाषा का उपयोग नहीं किया है। उनके पदों में राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती के अलग–अलग प्रयोग मिलते हैं। कुछ पदों में तो पंजाबी, खड़ी बोली, तथा पूर्वी बोलियों का भी मिश्रण हुआ है। मीरा राजस्थान की रहने वाली थी, कुछ दिनों तक वह वृंदावन में रही और शेष दिनों में वह द्वारिकापुरी में जाकर रही। इस प्रकार तीन जगह पर मीरा अधिक समय तक रही।

राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों ही पश्चिमी अपभ्रंश की पम्परा में आती हैं, यदि हिन्दी साहित्य के आदिकाल में राजस्थानी मिश्रित पिंगल का व्यापक प्रचलन था तो मध्यकाल में ब्रजभाषा सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में ही नहीं बल्कि बंगाल, उड़ीसा, पंजाब,

---

[11] मरू मंदाकिनी मीरा / रतनलाल मिश्र / पृ. 67, पद सं. 20
[12] मरू मंदाकिनी मीरा / रतनलाल मिश्र / पृ. 68, पद सं. 22
[13] मरू मंदाकिनी मीरा / रतनलाल मिश्र / पृ. 90, पद सं. 61

गुजरात, असम आदि प्रांतों में काव्यभाषा के रूप में व्यवहृत होती थी। इतना अवश्य कि ब्रजभाषा पर क्षेत्रीय बोलियों का व्यापक प्रभाव रहा हैं । अतः मध्यकाल में ब्रजभाषा का प्रचलन अधिक होने से मीरा इससे किस प्रकार विलग रह सकती थी । उन्होंने भी अपने गिरधर की भक्ति करते हुए इस भाषा का अपने काव्य में भरपूर प्रयोग किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

(1) ब्रज साहित्य का इतिहास, डॉ. सत्येन्द्र, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संवत् 2024 वि.।
(2) बिहारी सतलई / डॉ. डी. एस. भाटी, अक्षरम सोनीपत, हरियाणा। प्रकाशन वर्ष 1987
(3) मरू मंदाकिनी मीरा / रतनलाल मिश्र, साहित्यागार, जयपुर, संस्करण – 2010
(4) मीरांबाई / श्रीकृष्णलाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 2007
(5) सूर पदावली / वागदेव, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम– 2011
(6) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी / 16वां संस्करण, संवत् 2025
(7) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, सन् 1958
(8) हिन्दी और भारतीय भाषा साहित्य का तुलतनात्मक अध्ययन / डॉ. रामछबीला त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण 2017